संस्कृति : एक नया अध्ययन

शशिवल्लभ शर्मा
सहा. प्राध्यापक,
हिन्दी विभाग,
अम्बाह स्नातकोत्तर (स्वशासी) महाविद्यालय,
अम्बाह, मुरैना, (म.प्र)

सारांश

जहाँ सांस्कृतिक सम्पन्नता है, वहाँ श्रेष्ठ सभ्यता है। जहाँ मात्र सभ्यता है, वहाँ संस्कृति हो ही नहीं सकती। मात्र अभिनय होगा, दिखावा होगा। एक पुष्प की सुगन्ध परागकण संस्कृति है। उसका बाह्य सौन्दर्य, पंखुड़िया, रंग, सभ्यता है।

मुख्य शब्द : सस्कृति नया अध्ययन, संस्कृति सभ्यता में अन्तर, सरिता का धारा है संस्कृति, संस्कृति की परिभाषा, सांस्कृतिक मूल्य, भारतीय संस्कृति, बच्चों में सांस्कृतिक मूल्य।

प्रस्तावना

संस्कृति के सम्बंध में प्रायः सभी विद्वानों ने एक ही बात कही है। ''संस्कृति शब्द 'सम' उपसर्ग के डुकृञ (करण) धातु से 'सुट्' का आगम करके 'क्तिन' प्रत्यय लगाकर बना है। इसका शाब्दिक अर्थ साफ या परिष्कृत करना है।''[1] ''संस्कृति संस्कार करने अर्थात वस्तु को संस्कृत रूप देने की क्रिया या भाव/परिमार्जित, शुद्ध या साफ करना है।''[2] ''संस्कृति का अंग्रेजी शब्द कल्चर है, जो Cult धातु में Ure लगने से बना है। इस शब्द की व्युत्पत्ति लेटिन भाषा की कोलर से निष्पन्न 'कुलटुरा' शब्द से मानी गई है, जो पूजा करने तथा कृषि कार्य का द्योत्तक है। भूमि की प्राकृतिक अवस्था को परिष्कृत करना ही कृषि का उद्देश्य है। कृषि उत्पादन से पूर्व खेतीहर भूमि के रोड़े, कूड़ा, कंकण, घास–फूस साफ कर कृषि योग्य बनाई जाती है। इसके उपरांत ही खेतीहर भूमि पर अत्यधित उत्पादन होता है। कृषि भूमि की भाँति ही मनुष्य की मानसिक और सामाजिक अवस्था भी विकसित हुआ करती है। मनुष्य की सहज प्रवृत्तियाँ, नैसर्गिक शक्तियाँ उनके परिष्कार का द्योत्तक है।''[3] ''संस्कृति शब्द का अर्थ है, सफाई, स्वच्छता, शुद्धि या सुधार। ''सम्यक करणं संस्कृति'' प्रकृति की दी हुई भद्दी, मोटी कुदरती चीज को सुन्दर बनाना, सँभाल कर रखना, अधिक उपयोगी और श्रेष्ठ बनाना संस्कृति है।''[4]

अधिकांशतः विद्वानों का संस्कृति के सम्बंध में एक जैसा मत है। सभी का मानना है कि संस्कृति वह है, जिसे परिस्कृत किया जाये, शुद्ध किया जाये। यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि हम शुद्ध, साफ, परिस्कृत उसे करते हैं जो गंदा हो, म्लेच्छ हो। यदि कोई पहले से ही स्वच्छ है तो फिर परिस्कृत करने की बात उत्पन्न ही नहीं होती। जब कोई शिशु पैदा होता है, तब वह पूर्णतः शुद्ध होता है। उसकी मानस भूमि पर किसी तरह का मैल या गंदगी नहीं होती, तो फिर शुद्ध या परिस्कृत करने की बात क्यों? इसलिए संस्कृति की उपर्युक्त परिभाषाएँ एवं अर्थ सभी दृष्टि से मान्य कर लेना असंगत है। इनमें कुछ सुधार किया जाए तो संस्कृति का अध्ययन नये अर्थ में सर्वदृष्टि से मान्य किया जा सकता है।

हम देखते हैं कि बगीचे में जब पौधा उगता है, तब माली उस पौधे के विकास के लिए अनुकूल माहौल तैयार करने का प्रयास करता है। पौधे को हवा, पानी, रोशनी मिलती रहे ताकि वह अपना पूर्ण विकास कर सके। पौधा धीरे–धीरे बढ़ता है, उसकी पत्तियाँ चारों ओर फैलने लगती हैं, तब माली अनावश्यक अतिक्रमण करने वाली डालियों और पत्तियों को काट–छाँट कर उसे सुन्दर आकार देता है। उसमें पल्लवित सुन्दर पुष्प उस पौधे को दिए गए अनुकूल माहौल का परिणाम है। पुष्प पौधे के बीज में पूर्व से ही समाहित है, माली तो उसकी क्षमताओं को विकसित करता है और उसकी अनावश्यक बढती डालियों और पत्तियों को काटकर उसकी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों पर रोक लगाता है तथा क्षरण हो रही ऊर्जा को पुष्प और फल की ओर रूपान्तरित करता है। पौधे का पोषण माली की कुशलता पर निर्भर करता है। माली का सकारात्मक प्रयास ही पुष्प का सौन्दर्य है।

उक्त उदाहरण के द्वारा हम समझें कि एक बच्चा (पौधा) जब जन्म लेता है तब उसके परिवारी जन (माली) उसके विकास के लिए उसे संस्कारित

करते हैं। संस्कारित करना, माहौल तैयार करना है। जिस तरह पौधे के अन्दर से ही पत्तियाँ, पुष्प, फल धीरे–धीरे विकास करते हैं, ठीक वैसे ही मानव के भीतर से ही समस्त मानवीय–मूल्य विकसित होते जाते हैं। बगीचे में पौधे के सौंदर्य के लिए उसकी अनावश्यक डालियों और पत्तियों को काटा जाता है, वैसे ही मानव में उत्पन्न होने वाले वे मूल्य जो मानव और समाज के लिए अहितकर हैं उन्हें रोकने का प्रयास किया जाता है। बच्चे के परिवारी जन जितनी कुशलता से उसके अमानवीय मूल्यों को तुड़वाकर उसकी बहती हुई ऊर्जा को रोकते हैं और उसे समाज सापेक्ष मूल्यों की ओर प्रेरित करते हैं, तब वह आगे चलकर उतना ही संस्कारवान हो जाता है।

बच्चे को या पौधे को शुद्ध नहीं किया गया सिर्फ अनावश्यक बहती हुई ऊर्जा को रोककर पुष्प की ओर, समाज सापेक्ष मूल्यों की ओर रूपान्तरित किया गया। ऊर्जा को रूपान्तरित करना संस्कार देना है।''मूल्यों का सकारात्मक और रचनात्मक स्वरूप संस्कृति ह।'' दूसरे शब्दों में कहें तो'' अपनी प्रतिभा को भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए क्रियात्मक रूप देना ही संस्कृति है।'' संस्कृति सत्यम शिवम् सुन्दरम् है, इसमें अमंगल है ही नहीं।

संस्कृति के दो पहलू हैं, सुख और दुःख। सुख को प्राप्त करने के लिए किए गये वे सभी कर्म चाहे वे भौतिक सुख हों या आध्यात्मिक सुख। मानव – संस्कृति है। सुख को पाने के लिए किए गये कर्म तथा सुख और दुःख पानें के पश्चात होने वाली उन सभी क्रियाओं को यदि कोई संज्ञा दी जा सकती है तो वह संस्कृति है। मानव अपनी उन्नति में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक और नैतिक मूल्यों को अपनाता है और उन्हें क्रियात्मक रूप देता है, इन सभी मूल्यों को अपनाने के पीछे एक हो उद्देश्य है, आन्तरिक संतुष्टि। जो आन्तरिक है वही संस्कृति है। दुःख संस्कृति का दूसरा पहलू है। व्यक्ति का सुख जब बाधित होता है, अवरुद्ध होता है तब दुःख की उत्पत्ति होती है। दुःख किसी भी रूप में प्रकट हो सकता है– क्रोध में, करुणा में, शोक में, रुदन में। दुःख के ये रूप, संस्कृति हैं। एक पिता अपने बेटे की कामयाबो पर आनन्दित होता है, ये उसकी सुखात्मक संस्कृति है, लेकिन उसकी असामायिक मृत्यु पर गहरे शोक में डूबना उसकी दुःखात्मक संस्कृति है।

संस्कृति बहती हुई सरिता की अनवरत धारा है, जिसमें कई छोटे– छोटे झरने अपना अस्तित्त्व समाप्त कर सरिता बन जाते हैं। इसी तरह एक बड़ी संस्कृति में कई छोटी– छोटी संस्कृतियाँ मिलकर उसे विस्तार रूप देती हैं। भारतीय संस्कृति इसका बड़ा उदाहरण है। जैसा कि ऊपर लिखा गया कि संस्कृति सरिता है जिसकी धारा में बहाव है, उसे रोका नहीं जा सकता। अगर रोका गया तो संज्ञा बदल जाएगी, बाँध बन जाएगा, सरिता नहीं रह जाएगी। संस्कृति कभी टूटती नहीं, केवल इसका स्वरूप परिवर्तित होता है। इस संदर्भ में संजीव भानावत ने लिखा है कि '' संस्कृति संस्कारों का अक्षय कोश है जो विभिन्न रूपों में परिवर्तित होकर भी नष्ट नहीं हाती।''5 जिसे हम संस्कृति का टूटना मान लेते हैं वह संस्कृति है ही नहीं। वह सभ्यता है जो टूट जाती है। सभ्यता भौतिक है जिसका टूटना और निर्मित होना चलता रहता है। संस्कृति को सकारात्मक रूप देने के लिए, उसे ऊर्जान्वित बनाए रखने के लिए सभ्यता का आवरण चढ़ाया जाता है, जो समाज द्वारा निर्मित है। सभ्यता का टूटना संस्कृति टूटना कदापि नहीं है। शरीर का मरना आत्मा का नष्ट होना नहीं है। आत्मा एक शरीर को त्याग कर दूसरे शरीर का विकास करती है। संस्कृति भी एक टूटी हुई सभ्यता से निकल कर दूसरी सभ्यता को विस्तार देती है। भारतीय संस्कृति एक आध्यात्मिक संस्कृति है। आध्यात्मिक उन्नति के लिए मानव धर्म के कई साधनों को अपनाता है। देश, काल, परिस्थितियों के अनुसार साधन निर्मित होते हैं और टूटते हैं। समय के साथ सभ्यता भी टूट जाती है, लेकिन संस्कृति नहीं। संस्कृति और सभ्यता जीवन के दो पहलू हैं एक आंतरिक है तो बाह्य। दोनों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता, लकिन समस्या तब पैदा हो जाती है जब लोग सभ्यता को ही संस्कृति समझ लेते हैं। जैसा कि कहा गया है कि सभ्यता बाह्य है। मानव का शरीर सभ्यता है। शरीर के अंतर में उसकी आत्मा संस्कृति है। सभ्यता से हमारा आशय उस सम्पूर्ण यंत्र पद्धति और संगठन से है, जिसको मनुष्य ने अपनी जीवन की दशाओं को नियंत्रित करने के लिए निर्मित किया है। एक ओर सभ्यता संस्कृति के विकास के उच्च स्तर को व्यक्त करती है तो दूसरी ओर व्यक्ति के तमाम कुसंस्कारों पर परदा भी डालती है। सभ्यता नकल है जिसे कोई भी अपना सकता है। सभ्यता एक आवरण है, एक लिबास है, जिसे अपनी गंदगी छिपाने के लिए कोई भी पहन सकता है। सभ्यता को ठोक वैसे ही समझ लेना चाहिए जैसे टण्ट हाउस के मैले, कुचले, गंदे गद्दों पर धुली हुई सफेद चादर का विछौना। इसी तरह व्यक्ति अपनी तमाम आंतरिक पाशविक वृत्तियों को सभ्यता का लिबास ओढ़कर छिपाने का प्रयास करता है।जहाँ सांस्कृतिक सम्पन्नता है वहाँ श्रेष्ठ सभ्यता है। जहाँ मात्र सभ्यता है वहाँ संस्कृति हो ही नहीं सकती। मात्र अभिनय होगा, दिखावा होगा। एक पुष्प की सुगंध, परागकण संस्कृति है, उसका बाह्य सौंदर्य, पंखुड़ियाँ, रंग सभ्यता है। मानव के मुख से निकलने वाली मातृभाषा उसकी संस्कृति है, लकिन व्याकरण की सड़क पर शब्दों का दौड़ाना सभ्यता है। सभ्यता साधन है, संस्कृति साध्य। सभ्यता भौतिक है, संस्कृति अभौतिक। सभ्यता की माप है, संस्कृति को मापा नहीं जा सकता। '' संस्कृति सभ्यता की अपेक्षा महीन चीज होती है। यह सभ्यता के भीतर उसी तरह व्याप्त रहती है जैसे दूध में मक्खन या फूलों में सुगंध।'' [6]

संदर्भ सूची

1. हिन्दी साहित्य कोश, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, पृष्ठ 801
2. मानस हिन्दी कोश, पाँचवा खण्ड, रामचन्द्र वर्मा, पृष्ठ 234
3. स्वातंत्रोत्तर हिन्दी नाटकों में सामाजिक सम्बंधों के विघटन का अनुशीलन(शोध प्रबंध) दीपिका सक्सैना, पृष्ठ 115,116
4. भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्व, पं. श्री राम शर्मा, पृष्ठ 1.5
5. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में सांस्कृतिक बोध, संजीव भानावत, पृष्ठ 05
6. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, पृष्ठ 652